INDIAN STREAMS RESEARCH JOURNAL
ISSN NO : 2230-7850
IMPACT FACTOR : 5.1651 (UIF)
VOLUME - 12 | ISSUE - 10 | NOVEMBER - 2022

भारतेन्दु के प्रमुख प्रहसन अंधेर नगरी का अध्ययन

रमा तिवारी[1] , डॉ. प्रेमशंकर शुक्ल[2]
[1]शोधार्थी, हिन्दी विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.).
[2]विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, एस.आर.पी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हनुमना, जिला रीवा (म.प्र.).

सारांश –

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने युग की आवश्यकता को समझते हुए देशवासियों में जागृत उत्पन्न करने के लिए नाट्य के हास्य–व्यंग्य प्रधान रूप प्रहसन का प्रयोग किया। उन्होंने प्रहसन के माध्यम से राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र की विसंगतियों पर करारे व्यंग्य किये। परिणामस्वरूप उनका प्रहसन–साहित्य मात्र हास्य सर्जन के लिए न होकर विशिष्ट राष्ट्रीय उद्देश्य की पूर्ति का साधन बन गया।

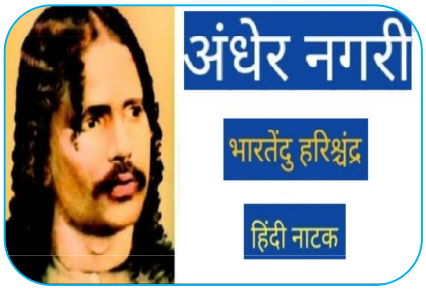

मुख्य शब्द – प्रहसन के माध्यम, राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र।

प्रस्तावना –

भारतेन्दु से प्रभावित होकर इस काल में कार्तिक प्रसाद खत्री, देवकीनंदन त्रिपाठी, बालकृष्ण भट्ट, अम्बिकादत्त व्यास, खड्गबहादुर मल्ल, प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी और किशोरीलाल गोस्वामी आदि ने भी अनेक सोद्देश्य प्रहसनों की रचना की। इन प्रहसनकारों ने वेश्यावृत्ति के दुष्परिणाम, पति–पत्नी के दुःखी जीवन, धार्मिक पाखण्ड, अनैतिक आचरण और दूषित राज्य व्यवस्था आदि को विषय बनाकर हास्य और व्यंग्य के माध्यम से समाज–सुधार का प्रयास किया है। बाल–विवाह, अनमेल विवाह, बहुविवाह, मांसाहार, मद्यपान, व्यभिचार आदि पर ही इस काल के प्रहसनकारों के समक्ष लेखनी चलाई है।

भारतेन्दु से पूर्व हिन्दी में जिन नाटकों का उल्लेख है, वे प्रायः आध्यात्मिक या पौराणिक हैं।[1] रामायण महानाटक, हनुमन्नाटक, चंडी–चरित्र, नहुष आदि पूर्व युग के प्रसिद्ध नाटक हैं। इन नाटकों के कथानक आध्यात्मिक अथवा पौराणिक हैं। अतः भारतेन्दु से पूर्व साहित्यिक प्रहसन का अभाव ही प्रतीत होता है। बाबू गुलाब राय के मत से भी यही स्पष्ट होता है– ''हिन्दी के नाटकों का प्रारम्भ शांत–रस के नाटकों में हुआ।'' डॉ. सोमनाथ गुप्त ने भी प्रहसन को भारतेन्दु काल की देन माना है।[2] इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि भारतेन्दु से पूर्व हिन्दी साहित्य में प्रहसन की परम्परा नहीं थी।

विश्लेषण –

ऐसा माना जाता है कि 'हरभूमि' के राजा 'हरबोंग' ने गोरखनाथ को फाँसी का दण्ड दिया था, परन्तु गुरु मच्छन्दरनाथ ने स्वर्ग का प्रलोभन एक लोकोक्ति भी प्रसिद्ध है– 'अंधेर नगरी चौपट राजा टे सेर भाजी टके सेर खाजा।' भारतेन्दु ने इसी लोक–वार्ता का आश्रय लेकर 'अंधेर–नगरी' प्रहसन की रचना ही, जिसमें तत्कालीन न्याय व्यवस्था की विडम्बना को व्यक्त किया है। 'हिन्दी–साहित्य कोश' के द्वितीय भाग में इस प्रहसन

के सम्बंध में लिखा है– ''यह प्रहसन अत्यंत प्रसिद्ध और लोक प्रचलित है।''[3] डॉ. शान्तारानी का मत है कि नाट्य–कला तथा हास्य विधान के दृष्टिकोण से भारतेन्दु जी का यह मौलिक प्रहसन, लोकप्रिय प्रहसन है।[4] डॉ. सोमनाथ गुप्त ने अंधेर नगरी' को कलात्मक दृष्टि से उच्च कोटि का प्रहसन माना है।[5]

डॉ. सुशीला धीर का मत है कि ग्रामीण तथा अन्य सभी व्यक्तियों ने इसका समादर किया।[6] इस प्रहसन में उत्कृष्ट नाट्यकला का प्रदर्शन इस प्रकार किया गया है कि अशिक्षित या अर्द्धशिक्षित भारतीय जनता तत्कालीन पारसी कम्पनियों तथा लोक रंगमंचों के भद्दे अश्लील अभिनयों से विमुख होकर सुरुचि सम्पन्न बन सके।

यह समाज सापेक्ष प्रहसन है। इसमें राज्य की अव्यवस्था का चित्रण किया गया है। विद्वान् लेखक ने सम्पूर्ण कथानक को छः अंकों में विभाजित किया है। प्रथम अंक में एक महन्त अपने दो शिष्यों के साथ प्रवेश करता है। वह अपने दोनों शिष्यों गोबरधनदास तथा नारायणदास को भिक्षा लेने जाने को कहता है और अधिक लोभ न करने का उपदेश देता है। वह कहता है–

''लोभ पाप को मूल है, लोभ मिटावत मान।
लोभ कभी ना कीजिए, या में नरक निदान।।''

महन्त, गोबरधनदास को पश्चिम की ओर तथा नारायण को पूर्व की ओर भेजता है। गोबरधनदास नगर को देखकर अत्यंत प्रसन्न होता है।

दूसरे अंक में बाजार का दृश्य है। जहाँ घासीराम चने वाला, नारंगी वाली, हलवाई, कुजड़िन, मुगल मेवा वाला, पाचक वाला, मछली वाली, जात वाला (ब्राह्मण) तथा बनिया को विक्रेता के रूप में प्रस्तुत किया गया है। ये सभी अपनी–अपनी वस्तुओं की प्रशंसा करते हैं और उसका भाव टके सेर बताते हैं। 'अंधेर नगरी' के बाजार की विशेषता है कि यहाँ चना और मेवा, सब्जी और मछली सब एक भाव हैं। इस बाजार के माध्यम से लेखक ने तत्कालीन समाज पर करारा व्यंग्य किया है। सभी टके की चकाचौंध में अंधे प्रदर्शित किये गये हैं। यहाँ टके के लिए मछलीवाली अपने 'जोवन' का लालच देकर ग्राहकों को फँसाती है। वह कहती है–

''लाख टका के बाला जोवन, गाहक सब ललचाय,
नैन–मछरिया रूप जाल में, देखत ही फंस जाय।
बिनु पानी मछरी सी बिरहिया, मिले बिना अकुलाय।।'

जातवाला (ब्राह्मण) टके के लिए अपनी जात बेचता है–

''.....एक टका दो, हम अभी अपनी जात बेचते हैं।
टके के वास्ते ब्राह्मण से धोबी हो जायें और धोबी को
ब्राह्मण कर दें.....।''

ब्राह्मण और मछलीवाली के कथनों से तत्कालीन समाज में व्याप्त अर्थ–पिपासा पर प्रकाश पड़ता है। समाज के लोगों का नैतिक पतन हो चुका है। वे टके के लिए अपने शरीर, जाति और धर्म को भी बेच देते थे। गोबरधनदास 'अंधेर नगरी' के बाजार में आता है और सभी खाने–पीने की वस्तुओं को टके सेर देखकर बड़ा प्रसन्न होता है। भिक्षा में मिले हुए सात पैसे से साढ़े तीन सेर मिठाई खरीद कर 'अंधेर नगरी चौपट राजा टके सेर भाजी टके सेर खाजा' गाता हुआ चला जाता है।

तीसरे अंक में गोबरधनदास महन्त को 'अंधेर नगरी' के बाजार की स्थिति बताता है। वह कहता है कि यहाँ सभी वस्तुएं टके सेर हैं। महन्त स्थिति की गम्भीरता को समझते हुए कहता है–

''तो बच्चा! ऐसी नगरी में रहना उचित नहीं है, जहाँ टके
सेर भाजी और टके सेर खाजा हो।''

गुरु के बहुत समझाने पर भी पेटू गोबरधन पर कोई असर नहीं होता वह कहता है–

''गुरु जी, ऐसा तो संसार भर में कोई देश ही नहीं है।
दो पैसा पास रहने ही से मजे में पेट भरता है।
मैं तो इस नगर को छोड़कर नहीं जाऊँगा..... ।''

बहुत समझाने पर भी जब गोबरधन नहीं मानता है तो महन्त कहता है कि जब भी आवश्यकता हो, वह उसे स्मरण कर ले और नारायणदास के साथ चला जाता है। गोबरधन अकेला बैठकर मिठाई खाता है।

चौथे अंक में तत्कालीन राजाओं के अविवेक को प्रदर्शित किया गया है। राज दरबार का दृश्य है। राजा, मंत्री नौकर आदि यथा स्थान प्रदर्शित किये गये हैं। एक सेवक राजा से पान खाने के लिए कहता है। शराब के नशे में डूबा हुआ राजा सेवक द्वारा कहे हुए 'पान खाइये' वाक्य को 'सूपनखा आइए' समझकर डर जाता है और दरबार से भागने लगता है। मंत्री उसका हाथ पकड़कर रोकता है और बताता है कि सेवक ने 'पान खाइये' कहा है। इस पर राजा क्रुद्ध होकर सेवक को सौ कोड़े लगाने के लिए कहता है, परन्तु मंत्री कहता है कि सेवक का कोई दोष नहीं है इसे तो तमोली ने पान लगाकर दिये तभी तो इसने आपसे पान खाने के लिए कहा। राजा तमोली की गलती मानकर उसे दो सौ कोड़े लगाने को कहता है। मंत्री पुनः कहता है कि महाराज आप 'पान खाइये' से नहीं डरे हैं, आप सूपनखा के नाम से डरे हैं। अतः सजा 'सूपनखा' को होनी चाहिए। राजा पुनः 'सूपनखा' का नाम सुनकर डर जाता है। तभी नैपथ्य में 'दुहाई है दुहाई' का शब्द होता है। राजा फरियादी को पकड़कर लाने का आदेश देता है। फरियादी को उपस्थित किया जाता है, वह कहता है कि कल्लू बनिये की दीवार के गिरने से मेरी बकरी दबकर मर गयी है। राजा दीवार को पकड़ लाने का आदेश देता है। मंत्री कहता है– ''महाराज दीवार नहीं लाई जा सकती।'' तब राजा उसके सम्बंधियों को लाने के लिए कहता है। मंत्री फिर समझता है, दीवार ईंट, चूने की होती है, उसका कोई सम्बन्धी नहीं होता। अंत में राजा के आदेश पर बनिये को पकड़कर लाया जाता है। बनिया दीवार बनाने वाले कारीगर को दोष देता है। कारीगर चूने वाले को दोष देता है। चूने वाला मिस्त्री को, मिस्त्री कसाई को, कसाई गड़रिये को और गड़रिया कोतवाल को दोष देता है। राजा कोतवाल को दोषी मानकर उसे फाँसी की सजा देता है और उसे दरबार से बरखास्त कर दिया जाता है।

पाँचवें अंक में राग काफी में 'अंधेर नगरी अनबूझ राजा, टका सेर भाजी टका सेर खाजा' गाता हुआ गोबरधनदास आता है। वह बैठकर मिठाई खाने लगता है। तभी चार आकर उसे पकड़ लेते हैं। वे कहते हैं कि उसे फाँसी मिलेगी। कारण स्पष्ट करते हुए प्यादे बताते हैं, कोतवाल को फाँसी का दण्ड मिला था, मगर फाँसी का फन्दा बड़ा होने के कारण उसके स्थान पर किसी मोटे आदमी को फाँसी देने का हुक्म हुआ है। गोबरधनदास यह सुनकर बड़ा दुःखी हुआ और अपने गुरु का स्मरण करने लगा। विद्वान् लेखक ने इस अंक में तत्कालीन शासन में सज्जनों की दुर्दशा का चित्रण किया है। एक प्यादा कहता है– ''इस राज में साधू–महात्मा इन्हीं लोगों की तो दुर्दशा है।''

अंतिम अंक में बेकसूर गोबरधनदास को फाँसी के लिए श्मशान ले जाया जाता है। तभी गुरु और नारायणदास आते हैं और सम्पूर्ण वृत्तांत सुनकर गुरु गोबरधनदास के कान में कुछ कहते हैं। गुरु–चेला परस्पर फाँसी चढ़ने के लिए झगड़ने लगते हैं। तब तक राजा मंत्री और कोतवाल भी वहाँ पहुंच जाते हैं। गुरु बताते हैं कि इस मुहूर्त में जो फाँसी चढ़ेगा वह सीधा स्वर्ग जायेगा। यह सुनकर राजा, मंत्री, कोतवाल सभी स्वर्ग जाने के लिए फाँसी चढ़ना चाहते हैं, परन्तु राजा के होते हुए और कोई कैसे स्वर्ग जा सकता था। अतः राजा स्वयं फाँसी पर चढ़ जाता है।

आलोच्य प्रहसन के प्रथम अंक के महन्त द्वारा लोभ न करने के उपदेश में 'बीज' अर्थ–प्रकृति है। यहीं 'मुख' और 'प्रारम्भ' अवस्था है। अंतिम अंक में महंत और गोबरधनदास के मध्य फाँसी चढ़ने के लिए होड़ लगती है, वहाँ 'कार्य' अर्थ–प्रकृति है। स्वर्ग प्राप्ति के प्रलोभन में मंत्री, कोतवाल तथा राजा फाँसी चढ़ने के लिए प्रेरित होना 'निर्वहण' सन्धि तथा राजा का स्वयं फाँसी पर चढ़ना 'फलागम' है।

राजा, महंत और गोबरधनदास इस प्रहसन के प्रमुख पात्र हैं। इन्हीं के चरित्र का चित्रण करना प्रहसनकार का उद्देश्य है। डॉ. ज्ञानवती अरोड़ा ने राजा को प्रहसन का नायक माना है।[7] डॉ. रामेश्वरनाथ भार्गव ने महंत को नायक तथा राजा को प्रतिनायक माना है।[8] सच तो यह है कि गोबरधनदास इस प्रहसन में प्रारम्भ

से अंत तक रहा है। केवल चौथे अंक में उसकी उपस्थित इसलिए नहीं है कि वह अंक राजा के चरित्र का चित्रण करने और तत्कालीन न्याय व्यवस्था को चित्रित करने के उद्देश्य से रखा गया है। वैसे सम्पूर्ण कथानक से गोबरधनदास का सम्बंध है और अंत में महंत की सहायता से अविवेकी राजा को फाँसी पर चढ़ने के लिए प्रेरित करता है। इस प्रकार फल से भी उसका सम्बंध है। अतः गोबरधनदास इस प्रहसन का नायक होने योग्य है।

गोबरधनदास ऐसे भारतीयों का प्रतीक है जो भौतिक चमक–दमक से प्रभावित हैं। वह महंत के समझाने पर भी पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति की प्रतीक 'अंधेर नगरी' को नहीं छोड़ता। पाश्चात्य संस्कृति और सभ्यता में पलकर वह हष्ट–पुष्ट तो हो जाता है, परन्तु अपने प्राण संकट में डाल देता है। अंत में महंत की सहायता से वह अन्यायी, अविवेकी शासक के प्रतीक राजा को फाँसी पर चढ़ने के लिए प्रेरित करता है। फलतः राजा स्वयं फाँसी पर चढ़ जाता है। इस प्रकार गोबरधनदास 'अंधेर नगरी' के अन्याय से मुक्ति प्राप्त करता है।

आलोच्य प्रहसन का दूसरा प्रमुख पात्र महंत है। महंत का चरित्र गुरु पद की गरिमा के अनुकूल है। वह अपने शिष्यों को लोभ न करने का उपदेश देता है तथा 'अंधेर नगरी' को दोष बताता है। वह कहता है–

''सेत सेत सब एक से, जहाँ कपूर कपास।
ऐसे देस कुदेस में, कबहुँ न कीजे बास।।
कोकिल बायस एक सम, पण्डित मूरख एक।
इन्द्रायन दाड़िम विषय, जहाँ न नेकु विवेक।।
बसिए ऐसे देश नहिं, कनक–वृष्टि जो होय।
रहिए तो दुःख पाइए, प्रान दीजिए रोय।।''

महंत की सहायता से गोबरधनदास स्वयं तो संकट से मुक्त होता ही है सम्पूर्ण समाज को भी अन्यायी, अविवेकी शासक से मुक्त करता है। इस प्रकार महंत को गोबरधनदास का सहायक भी कहा जाता है।

तीसरा प्रमुख पात्र राजा है। इसको आलोच्य प्रहसन का प्रतिनायक कहा जा सकता है। राजा के चरित्र के माध्यम से प्रहसनकार ने तत्कालीन शासकों के अविवेक और विलास का सुंदर चित्रण किया है। इस राजा के राज्य में प्रत्येक वस्तु का भाव टके सेर है। चना हो या मेवा, सब्जी हो या मछली, गुणहीन वस्तु हो या गुणवान, सभी वस्तुएं टके सेर हैं। राजा सदैव शराब के नशे में डूबा रहता है। वह इतना अविवेकी है कि प्रजा की समस्याओं को भी नहीं सुलझा पाता। मनमाने ढंग से न्याय करता है। किसी के दोष की सजा किसी को देता है। उसके अविवेक एवं अन्याय का आभास प्यादे के इस कथन से मिलता है– ''बात यह है कि कल कोतवाल को फाँसी का हुकुम हुआ था। जब फाँसी देने को उसको ले गए, तो फाँसी का फन्दा बड़ा हुआ, क्योंकि कोतवाल साहब दुबले हैं। हम लोगों ने महराज से अर्ज किया, इस पर हुक्म हुआ कि एक मोटा आदमी पकड़कर फाँसी दे दो, क्योंकि बकरी मारने के अपराध में किसी न किसी को सजा होना जरूरी है, नहीं तो न्याय न होगा। इसी वास्ते तुमको ले जाते हैं कि कोतवाल के बदले तुमको फाँसी दें।''

इस प्रहसन में नारायणदास और मंत्री भी प्रमुख पात्र हैं। नारायणदास ऐसा भारतीय है जो भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में विश्वास रखता है तथा उसी का अनुसरण करता है। महंत के कहने पर वह 'अंधेर नगरी' को छोड़कर चला जाता है। सम्पूर्ण प्रहसन में मात्र एक संवाद ही उसने कहा है–

''गुरु जी महाराज, नगर तो नारायण के आसरे से बहुत ही सुंदर है, जो है सो, पर भिच्छा सुन्दर मिले तो बड़ा आनंद होय।।''

इस संवाद के सिवाय नारायणदास को कहीं भी अपने मनोभावों को व्यक्त करने का अवसर नहीं मिला है। फिर भी लेखक ने इस पात्र की योजना इस प्रकार की है कि उसकी स्थिति बिलकुल स्पष्ट हो गई है। मंत्री चाटुकार व्यक्तियों का प्रतीक है, वह अपनी बुद्धि से अपनी इच्छा के अनुकूल राजा से आचरण कराता है। इन पात्रों के अतिरिक्त बनियाँ, जातवाला (ब्राह्मण), कुंजड़िन, नारंगीवाली, मछलीवाली, धासीराम (चनेवाला), पाचकवाला, कोतवाल आदि भी इस प्रहसन के पात्र हैं जो अपने–अपने कार्य के अनुरूप विशेषताओं से युक्त हैं। इन पात्रों का चरित्र–चित्रण भी स्वाभाविक है तथा दर्शकों का मनोविनोद करने वाला है।

आलोच्य प्रहसन में भारतेन्दु ने 'सर्वश्राव्य', 'नियतश्राव्य' और 'अश्राव्य' तीनों प्रकार के संवादों की योजना की है। प्रहसन के गीतों को 'सर्वश्राव्य' संवाद की कोटि में रखा जा सकता है। इन गीतों में तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था एवं शासनाधिकारों पर करारा व्यंग्य किया है। चूरनवाला तथा घासीराम (चने वाला) के गीत पर्याप्त लोकप्रिय हुए हैं। इन गीतों को आज भी सुना जाता है। चूरनवाले के गीत में तत्कालीन शासनाधिकारियों पर व्यंग्य द्रष्टव्य हैं– ''चूरन साहिब लोग जो खाता सारा हिन्द हजम कर जाता।'' महंत और गोबरधनदास जब फाँसी चढ़ने के लिए होड़ लगा रहे होते हैं तब एक सिपाही द्वारा दूसरे सिपाही से कहा हुआ 'नियतश्राव्य' संवाद प्रस्तुत है– ''भाई! यह क्या माजरा है, कुछ समझ नहीं पड़ता।'' मंत्री द्वारा राजा के संबंध में कहा हुआ एक 'अश्राव्य' संवाद प्रस्तुत है– (आप ही आप) ''यह तो गजब हुआ, ऐसा न हो कि यह बेवकूफ इस बात पर सारे नगर को फूँक दे या फाँसी दे।''

विवेच्य प्रहसन में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक परिस्थितियों का चित्रण करने में इन संवादों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। गोबरधनदास के संवादों में भौतिकता से प्रभावित व्यक्ति की मनोदशा का चित्रण है। वह कहता है–

> ''गुरु जी ऐसा तो संसार भर में कोई देश ही नहीं है।
> दो पैसा पास रहने से ही मजे में पेट भरता है।
> मैं तो इस नगर को छोड़कर नहीं जाऊँगा.....।''

महन्त के संवादों में गुरुपद की गरिमा के अनुकूल उपदेश निहित है। वह अपने शिष्यों को लोभ न करने का आदेश देता है। राजा के संवाद तत्कालीन शासकों के अविवेक का चित्रण करने में सफल रहे हैं। अन्य पात्रों के संवाद भी उनके व्यक्तित्व के अनुकूल हैं।

आलोच्य प्रहसन में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक परिस्थितियों का वास्तविक चित्रण हुआ है। भारतेन्दु के समय में सम्पूर्ण देश अंधेर नगरी बना हुआ था। अंग्रेज शासक मनमाना न्याय करते थे। साधू–संत शासक वर्ग की अन्यायपूर्ण नीतियों के शिकार हो रहे थे, भारतीयों का नैतिक पतन हो चुका था, वे पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति की चकाचौंध में अंधे हो रहे थे। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की चकाचौंध में अंधे हो रहे थे। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की पुकार तत्कालीन लोगों को सुनाई नहीं देती थी। राष्ट्रीय भावना लुप्त होती जा रही थी। इन सभी परिस्थितियों को भारतेन्दु ने इस प्रहसन में सफलतापूर्वक चित्रित किया है।

तत्कालीन न्याय व्यवस्था का हास्य–व्यंग्यात्मक चित्रण चौथे अंक में द्रष्टव्य है। कल्लू बनियाँ की दीवार के नीचे बकरी दब जाने के कारण कोतवाल को फाँसी का दण्ड मिलता है। तत्कालीन शासनाधिकारियों के मनमाने आचरण का संकेत एक प्यादे के कथन में देखने योग्य है– ''एक तो नगर भर में राजा के न्याय के डर से कोई मुटाता ही नहीं, दूसरे कोई किसी को पकड़े तो वह न जाने क्या बात बनाये कि हमीं लोगों के सिर कहीं न धहराय और फिर इस राज में साधू, महात्मा इन्हीं लोगों की तो दुर्दुशा है, इससे तुम्हीं को फाँसी देंगे।''[9]

धार्मिक क्षेत्र में संत–महंतों के आचरणों में भी गिरावट आने लगी थी। त्याग, वैराग्य की भावना साधुओं में से लुप्त होती जा रही थी। संतों की संगत का भी उन पर कोई प्रभाव नहीं होता था। साधु जीभ के चटकोरे हो रहे थे। गोबरधनदास के चरित्र से इसी बात का पता लगता है।

प्रस्तुत प्रहसन एक बहु–उद्देशीय रचना है। भारतीय संस्कृति और सभ्यता से विमुख भारतीयों के हृदय में अपनी सभ्यता और संस्कृति के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करना, तत्कालीन अन्यायी अविवेकी राजाओं को सावधान करना, राज्य की अव्यवस्था की ओर अंग्रेजी शासकों का ध्यान आकृष्ट करना तथा ग्रामीण जनता की रुचि को परिमार्जित करना आदि इस प्रहसन के उद्देश्य हैं। भारतेन्दु ने इस प्रहसन से भारतीय संस्कृति और सभ्यता से विमुख तत्कालीन भारतीयों को यह संदेश दिया है कि भारतीय संस्कृति और सभ्यता के द्वारा ही अंग्रेजी शासन रूपी अंधेर नगरी से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के प्रतीक महंत की सहायता से गोबरधनदास की मुक्ति में यही भाव निहित है। अंत में मूर्ख राजा द्वारा स्वयं फाँसी पर चढ़ना तत्कालीन अन्यासी, अविवेकी राजाओं को यह चेतावनी देता है कि अविवेकी राजा स्वयं अपने कर्म से अपने लिए फाँसी का फंदा तैयार कर लेता है। दीवार गिरने से बकरी का दबकर मरना और इसके लिए कोतवाल को दण्ड दिया जाना, प्रदर्शित करके विद्वान् प्रहसनकार ने अंग्रेजी शासकों का ध्यान राज्य की अव्यवस्था की ओर आकृष्ट किया

है। ग्रामीण जनता की रुचि के अनुकूल कथानक का चयन और उन्हीं की शिष्ट शब्दावली में उसका प्रस्तुतीकरण ग्रामीण जनता की रुचि को परिमार्जित करने का प्रयास है।

अभिनय की दृष्टि से यह एक सफल प्रयास है। अनेक बार अनेक नाट्य संस्थाओं द्वारा इसका सफल मंचन हो चुका है, आज भी यह प्रहसन मंचन के योग्य समझा जाता है। इसे भारतेन्दु कालीन प्रहसनों में सर्वाधिक लोकप्रिय प्रहसन माना जा सकता है।

भारतेन्दु सरीखी प्रतिभा का दूसरा कोई साहित्यकार कदाचित् हिन्दी आकाश को फिर न मिल सकता। उन्होंने कवि, लेखक, नाटककार, सम्पादक इन सभी रूपों में एक साथ प्रतिष्ठा प्राप्त की। भारतेन्दु जी ने, कहना न होगा, हिन्दी–गद्य का सूत्रपात किया। साहित्य–क्षेत्र की सभी पुरानी एवं नयी विधाओं में रचना करके उन्होंने हिन्दी–साहित्य को सर्वांगपूर्ण बनाया। लगभग 72 छोटे–बड़े ग्रंथों की रचना करके उन्होंने हिन्दी का अन्यतम प्रचार–प्रसार करते हुए हिन्दी–जगत में अपने लिए आगम्यमान समय के लिए स्थायी स्थान बना लिया। शायद यही कारण था जिसके आधार पर पंत जी ने कहा था –

> ''भारतेन्दु कर गये भारती की वीणा निर्माण।
> किया अमर स्पर्शों ने जिसका–बहुविधि स्वर संधान।।''[10]

भारतेन्दु स्वदेश, स्वेदेशी और स्वदेशीयता के प्रबल समर्थक थे। कहा जा सकता है कि उन्होंने इस त्रयी के अभ्युत्कर्ष का वीणा उठा रखा था। उनके व्यक्तित्व में देश भक्ति, मातृभाषा–भक्ति तथा ईश–भक्ति कूट–कूट कर भरी थी।[11] इसी महनीय भूमिका के कारण उन्हें हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का प्रवर्तक कहा जाता है।

निष्कर्ष –

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्रहसन तत्कालीन समाज की कुप्रथाओं पर करारा व्यंग्य है। उस काल में जबकि हिन्दी में प्रहसन रचना का कोई उदाहरण भारतेन्दु के समक्ष नहीं था, उनका यह प्रयास निश्चित ही सराहनीय है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सच्चे अर्थों में आधुनिक हिन्दी साहित्य के उन्नायकों में प्रारम्भिक महानायक थे। वे दो ऐतिहासिक युगों के ऐसे संधिस्थल पर खड़े थे जहाँ पर उन्हें हिन्दी की प्राचीन और नवीन दोनों रचना–शैलियों का ध्यान रखना था। यही कारण है कि उन्होंने न तो प्राचीन की उपेक्षा की, और न ही नवीनता के अतिशय मोह में बँधे। उन्होंने वस्तुतः अपनी साहित्यिक प्रतिभा के विनिवेश से दोनों धाराओं का सम्मिलन किया और उन्हें उल्लेखनीय अग्रगति दी।

संदर्भ –

1 बाबू गुलाबराय – हिन्दी नाट्य–विमर्श, पृष्ठ 75
2 डॉ. सोमनाथ गुप्त – हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 72
3 प्रधान संपादक धीरेन्द्र वर्मा – हिन्दी साहित्य कोष, भाग 2, पृष्ठ 2
4 डॉ. शान्तारानी – हिन्दी नाटकों में हास्य तत्व, पृष्ठ 169
5 डॉ. सोमनाथ गुप्त – हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 48
6 डॉ. सुशीला धीर – भारतेन्दु युगीन हिन्दी नाटक, पृष्ठ 85
7 डॉ. ज्ञानवती अरोड़ा – हिन्दी साहित्य में प्रहसन, पृष्ठ 71
8 डॉ. रामेश्वरनाथ भार्गव – हिन्दी प्रहसन के सौ वर्ष, पृष्ठ 30
9 डॉ. शान्तारानी – हिन्दी नाटकों में हास्य तत्व, पृष्ठ 196
10 डॉ. भगवतस्वरूप मिश्र – काव्यांजलि, राजकीय प्रकाशन, पृष्ठ 104
11 प्रो. रामचन्द्र श्रीवास्तव, डॉ. कैलाशचन्द्र अग्रवाल – भारतेन्दु–काव्यामृत, पृष्ठ 3